समीक्षा

समीक्षा एवं शोध त्रैमासिक

अक्टूबर-दिसंबर, 2017

वर्ष 50, अंक 3

संस्थापक सम्पादक
गोपाल राय

सम्पादक
सत्यकाम

संयुक्त सम्पादक
अमिताभ राय

प्रबन्धन
सीमा

समीक्षा

ISSN : 2349-9354

अक्टूबर-दिसंबर, 2017

वर्ष: 50. अंक : 3

प्रकाशन तिथि : 15 दिसंबर, 2017

मूल्य :

एक प्रति: *तीस रुपये*

संस्थाओं के लिए : *पचास रुपये*

वार्षिक सदस्यता : *दो सौ रुपये (डाक खर्च सहित)*

संस्थाओं के लिए : *तीन सौ रुपये (डाक खर्च सहित)*

आजीवन सदस्यता : *पांच हजार रुपये (डाक खर्च सहित)*

सम्पर्क:

समीक्षा

द्वारा *अमिताभ राय*

803. अमलतास, शिप्रा सृष्टि अहिंसा खंड-1,

इंदिरापुरम-201014. उ.प्र.

मोबाइल : 09582502101

ईमेल : sameekshatraimasik@gmail.com

निवेदन: कृपया सारे भुगतान केवल बैंक ड्राफ्ट अथवा ई-ट्रांसफर द्वारा निम्न चालू खाता संख्या: 2257002100011106. IFSC Code: PUNB0225700, पंजाब नेशनल बैंक, इग्नू, मैदानगढ़ी, दिल्ली-110068 में कीजिए। बैंक ड्राफ्ट 'समीक्षा' को नई दिल्ली में देय होगा। ड्राफ्ट उपरोक्त पते पर भेजें।

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से सहयोग प्राप्त

पत्रिका का अंक न मिलने पर इसकी सूचना उपरोक्त पते पर दें अथवा उपर्युक्त नं. पर सम्पर्क करें।

'समीक्षा' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। सम्पादक, संयुक्त सम्पादक पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

किसी भी विवाद की स्थिति में न्यायाधिकरण, दिल्ली होगा

आवरण चित्र: लीलाधर मंडलोई

अनुक्रम

संपादकीय

संपादकीय पर संपादकीय 4

केंद्रस्थ

अपनी ओर से — विश्वनाथ प्रसाद तिवारी 7

कविता

भोगी हुई जिंदगी से लिखी हुई जिंदगी तक की यात्राएँ — ए. अरविंदाक्षन 10

कविता सबसे सुंदर सपना है — रेवती रमण 18

मानवीय संवेदना का जीवंत दस्तावेज फिर भी कुछ रह जायेगा — माधव कौशिक 23

आलोचना

गद्य का परिवेश या परिवेश निरपेक्ष साहित्य की प्रस्तावना — इन्द्रमणि कुमार 26

आधुनिक कविता का मर्मोद्घाटन — पूनम सिन्हा 30

गाँधी दर्शन

एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक — मनीष करमार 38

आत्मकथा

'अस्ति और भवति' के बीच होते रहने की जद्दोजहद — शशिभूषण द्विवेदी 40

यात्रा-संस्मरण

जो दीखता है और दिखता नहीं — विद्या सिन्हा 42

डायरी

दिन रैन : देशकाल से संवाद — अ[redacted]

यात्रा-संस्मरण

देश-काल और परिस्थिति को उकेरती कृति — लव कुमार 48

साक्षात्कार

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी रचना और आलोचना के सरोकार — धर्मेन्द्र सुशांत 50

पत्र

पत्र साहित्य की पूर्वपीठिका हैं — अमिता पाण्डेय — 53

उपन्यास

प्रामाणिक अनुभवों की कलात्मक अभिव्यक्ति — हेमराज कौशिक — 56

यात्रा संस्मरण

यात्रा का नया प्रतिमान — अमिता पाण्डेय — 60

आलोचना

कृष्णा सोबती की दुनिया का जायजा — राजीव कुमार — 62

कविता

संस्कृति विमर्श में सम्मिलित करती कविताएँ — मोबिन जहोरोद्दीन — 65

सोंधी मिट्टी की गंध — प्रदीप कुमार — 68

बारिश मेरा घर है — ज्ञानप्रकाश विवेक — 72

कवि उदास है, क्योंकि पानी उदास है — विजय शर्मा — 75

जनतंत्र का वितान रचती कविताएँ — शिव कुमार यादव — 77

उपन्यास

अप्रवासन का दर्द और आदिवासी समाज माटी माटी अरकाटी — धनंजय कुमार चौबे — 80

यथार्थ और फैंटेसी का समन्वय — राहुल सिद्धार्थ — 83

कहानी

अपने लोकेल से विमर्श खड़े करती कहानियाँ — ज्योति चावला — 87

प्रेम और बौद्धिकता की त्रासद कहानियाँ — बीरेन्द्र सिंह — 92

संस्मरण

संस्मरण का पर्वत प्रदेश — 94

विचार

मानवीय संघर्ष की दास्तान यादों का लाल गलियारा: दंतेवाड़ा — विद्यासागर सिंह — 96

मीडिया

लोकतंत्र के चौथे खंभे की विडम्बनाएँ — हनुमत लाल मीना — 98

दिन रैन : देशकाल से संवाद

अनिल राय

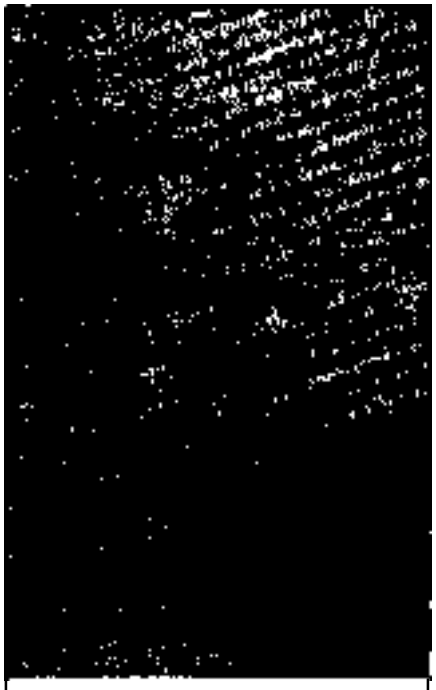

प्र. वाणी प्रकाशन
4695, 21-ए, दरियागंज
नयी दिल्ली-110002
प्र.सं. 2014. पृ. सं. 212. ₹ 395

75 शुभम अपार्टमेंट, आई.पी. एक्सटेंशन
पटपड़गंज, दिल्ली-110092
09810379859

हिंदी साहित्य-जगत् में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी एक जाना-पहचाना नाम है। वैसे तो तिवारी जी अपने आलोचना-कर्म, कविता-लेखन कथा-सृजन तथा यात्रा-वृतांत जैसी अनेक साहित्यिक विधाओं में लेखन के लिए जाने जाते हैं, किंतु अब उनकी 'दिन रैन' शीर्षक डायरी प्रकाशित हुई है। उनकी यह डायरी सन् 1968 से 2013 तक की अवधि की है। डायरी में नवंबर 1990 से मई 2001 तक की सामग्री अनुपलब्ध है जिसका जिक्र उन्होंने भूमिका में कर दिया है। डायरी की एक खास बात यह है कि लेखक ने इसके पन्नों को अपने लेखन की सबसे बड़ी पूँजी माना है। डायरी की भूमिका में लेखक ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इसमें कहीं भी असत्य और कल्पना को स्थान नहीं मिला है। वास्तविक जीवन में उसने जो कुछ देखा, समझा और महसूस किया उसे ही शब्दों में टाँकने की कोशिश की है। 'दिन रैन' में देशकाल और समाज से संवाद करते लेखक ने साहित्य, समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति के विविध पहलुओं व इनके भीतर घट रही घटनाओं पर बेबाकी से टिप्पणी की है। लेखक का कहना है कि इस डायरी में लेखक के जीवनानुभव समग्रता में मौजूद नहीं हैं। उल्लेखनीय है कि तिवारी जी की मुकम्मल आत्मकथा 'अस्ति और भवति' पहले ही प्रकाशित हो चुकी है।

'दिन रैन' में विभिन्न साहित्यिक संगोष्ठियों, यात्राओं व अन्य साहित्यिक कार्यक्रमों की चर्चा के बरक्स साहित्य-जगत् की ऐसी अनेक अनसुनी घटनाओं व प्रसंगों का उल्लेख है, जो न केवल पाठकों का ज्ञानवर्द्धन करती हैं बल्कि उन चर्चाओं में एक खास ढंग से शरीक होने का अवसर भी प्रदान करती हैं। डायरी के आरंभिक अंश में मार्च 1972 में साहित्य अकादमी द्वारा सुनीति कुमार चटर्जी की अध्यक्षता में आयोजित एक पुरस्कार-वितरण कार्यक्रम का जिक्र आया है। अपने वक्तव्य में नामवर जी ने जिस रोचक ढंग से आलोचना-कर्म की ओर स्वयं के अग्रसर होने का कारण बताया उसे डायरीकार द्वारा इस प्रकार उद्धृत किया गया है- "पुरस्कार-ग्रहण के बाद सभी लेखकों ने अपने संक्षिप्त वक्तव्य दिये। नामवर सिंह ने कहा- मैंने सरस्वती के मंदिर में कविता के साथ प्रवेश किया था। मगर जब देखा कि साधुओं ने मंदिर को गंदा कर रखा है तो झाड़ू उठाने की जरूरत महसूस हुई।"

समाज में साहित्य की भूमिका और उसकी उपादेयता के संबंध में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का मानना है कि साहित्य समाज का दर्पण मात्र नहीं है, बल्कि वह समाज को निर्मित भी करता है। इस बात की पुष्टि के लिए वे समाज-निर्माण में वेदों, पुराणों उपनिषदों आदि की भूमिका

को चिह्नित करना नहीं भूलते। यदि समाज में यह साहित्य होता ही नहीं तो भारतीय संस्कार आज वैसे नहीं हो सकते थे, जैसे हैं। लेखक की दृष्टि में ऐसा नहीं है कि समाज अपनी संपूर्णता में साहित्य में स्पेस पा लेता है। कौन-सा समाज साहित्य में जगह पाता है, यह एक बड़ा सवाल है जिसे वे यहाँ उठाते हैं और यह भी कहते हैं कि साहित्य हमेशा से समाज के मुखर वर्ग का दर्पण रहा है। हाशिये पर पड़े समाज को अपने भीतर समेटने में उसे खासी मशक्कत करनी पड़ती है। साहित्य में मौलिकता जैसे गंभीर मसलों की भी चर्चा डायरी में हुई है। यहाँ उनका स्पष्ट रूप से मानना है कि प्रत्येक मौलिकता में अनुकरण की भूमिका होती है, क्योंकि मनुष्य की सोच, उसका ज्ञान और व्यवहार सभी कुछ इसी जगत से उसे प्राप्त होता है। साहित्य की रचना-प्रक्रिया की जटिलताओं पर भी डायरीकार ने अपना सूक्ष्म चिंतन व्यक्त किया है। तिवारी जी के अनुसार कोई भी रचना केवल परिवेश की ही उपज नहीं होती। यही कारण है कि एक ही परिवेश में विभिन्न प्रकृति वाली रचनाएँ सृजित होती हैं। सृजन में रचनाकार की मनोदशा, उसके संस्कार तथा उसकी कल्पना-शक्ति सभी की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। लेखक की दृष्टि में कोई भी सफल व महान रचना तब अस्तित्व में आती है जब वह रचनाकार के अवचेतन से अनायास ही फूटती है- "जो रचनाएँ अवचेतन से अनायास फूटती हैं, उनमें एक विलक्षण सहजता, स्वाभाविकता, संपूर्णता और सार्वभौमता होती है। ऐसी रचनाएँ सबसे ज्यादा सुख अपने रचयिता को देती हैं। इसलिए इन्हें स्वांतःसुखाय कहा जाता है।" विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने वर्तमान पीढ़ी के अधिकांश कवियों द्वारा रचित कविताओं को महज तात्कालिक प्रतिक्रिया माना है। इनमें उन्हें वह गंभीरता और गहराई नहीं दिखायी पड़ती जैसी पहले के कवियों में होती थी। उनका यह भी कहना है कि साहित्यकार सामान्य व्यक्ति से कई मायनों में विशिष्ट होता है। वह अपने त्याग और संघर्ष द्वारा लोकमंगल की साधना को ही अपना पुनीत दायित्व समझता आया है। किंतु जब वह अपने पथ से चूकता है तो लोक में उसकी प्रतिष्ठा भी घट जाती है। 'दिन रैन' में भाषा और व्याकरण के संबंध में भी डायरीकार ने अपने विचार व्यक्त किये हैं- "भाषा मनुष्य द्वारा किया गया आज तक का सबसे मूल्यवान आश्चर्यजनक आविष्कार है।..... मगर सच यह भी है कि भाषा की एक सीमा है। वह हमारी इंद्रियों द्वारा दृश्य संपूर्ण वस्तु-जगत को या भावों की चरम स्थिति को ठीक-ठीक उसी रूप में व्यक्त नहीं कर पाती।... भाषा और अनुभव का द्वंद्व रचनाकार बराबर महसूस करता है।" भाषा में व्याकरण की भूमिका के विषय में लेखक का कहना है कि- "भाषा के सामाजिक रूप को बनाये रखने के लिए व्याकरण आवश्यक है, जैसे नदी के प्रवाह को बनाये रखने के लिए दो किनारे जरूरी होते हैं।"

समीक्ष्य डायरी में लेखक ने व्यवहार के धरातल पर लगातार क्षरित हो रहे वैचारिक आदर्श पर गहरी चिंता व्यक्त की है। समाजवाद, मार्क्सवाद, लोकतंत्र व न्याय जैसे शब्दों का निरंतर अवमूल्यन लेखक को चिंतित करता है। ऊपर से विचारधारा का भारी लबादा ओढकर भीतर-भीतर मलाई खाने वालों के सच को अनावरित करते हुए तिवारी जी लिखते हैं- "ऊपर मार्क्सवाद और नीचे अवसरवाद। ऊपर जनवाद और नीचे व्यक्तिवाद1 जो अपने को सेक्यूलर और प्रगतिशील कहता है, वह विंध्याचल में दाढ़ी मुड़ाता है, तांत्रिकों ज्योतिषियों से घिरा रहता है, मस्जिद में पाँच बार नमाज अदा करता है, जो नेता जातिवाद का विरोध करता है वही उस चुनाव-क्षेत्र की तलाश करता है जहाँ उसकी जातिवालों की सख्या अधिक हो। लोकतंत्र का समर्थन करने वाला तानाशाही आचरण करता है।"

अज्ञेय के समकालीन बड़े आलोचकों द्वारा उनकी उपेक्षा न केवल अज्ञेय को आहत करती थी, अपितु इसका विश्वनाथ प्रसाद तिवारी को भी रहा है। एक संगोष्ठी की चर्चा करते हुए तिवारी जी ने अज्ञेय की इस पीड़ा को स्वयं उन्हीं के शब्दों में व्यक्त करते हुए लिखा है- "आपको अज्ञेय के नाम से परहेज है तो उसका नाम काट दें पर उसका लिखा हुआ एक बार पढ़ तो लें। मैं उन प्रश्नों पर वर्षों से विचार करता और लिखता आ रहा हूँ जिस पर आप यहाँ चर्चा कर रहे हैं। आप से यह अनुरोध करने के लिए मेरे पास तो अब अधिक वक्त नहीं रह गया है, पर आपको इन प्रश्नों से टकराना ही होगा।" अज्ञेय की आयु उस समय 76 वर्ष थी जब उन्होंने ये उद्गार व्यक्त किये थे। लेखक के अनुसार- "इस कथन से कुछ लेखक हिल गये थे। उनकी पीड़ा निश्छल थी। आज हिंदी में युवा लेखक एक अजीब-सी नारेबाजी में फँसकर किसी भी लेखक को बिना पढ़े प्रतिक्रियावादी आदि कहने व मानने लगे हैं। साहित्य की दुनिया में दुष्प्रचार या आत्मप्रचार या बँधा हुआ अपढ़ मस्तिष्क किसी लेखक को बहुत दूर तक नहीं ले जाता।" जून)2012 में उत्तर प्रदेश भाषा संस्थान, लखनऊ द्वारा आयोजित एक विचार-गोष्ठी में साहित्यकार मुद्राराक्षस द्वारा अज्ञेय पर दिये गये एक वक्तव्य का जिक्र यहाँ डायरीकार ने किया है। आलोचना-जगत का अज्ञेय के साथ किये गये भेदभावपूर्ण व्यवहार की याद तिवारी जी दिलाते हैं। उनके अनुसार सितंबर 2009 में भारतीय भाषा परिषद् कोलकाता और साहित्य अकादमी के संयुक्त प्रयास से एक संगोष्ठी आयोजित की गयी थी। अवसर था आचार्य नंददुलारे वाजपेयी की शतवार्षिकी समारोह का। इसे याद करते हुए उन्होंने कहा है कि "वाजपेयी जी मार्क्सवाद के विरोधी थे अतः परवर्ती मार्क्सवादी आलोचकों ने सुनियोजित ढंग से उनको हाशिये पर करने की कोशिश की तथा उन्हें

पाठ्यक्रमों से बहिष्कृत कर दिया। जे.एन.यू. के एक पूर्व छात्र श्री भगवान सिंह ने संगोष्ठी में कहा कि छात्रों तक को उनके महत्त्व के बारे में नहीं बताया गया।"

'दिन रैन' में स्त्री-विमर्श और दलित-विमर्श जैसे अस्मितामूलक चिंतन पर भी लेखक की पैनी नजर दिखायी पड़ती है। उनका स्पष्ट मानना है कि स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक और यथार्थवादी होती हैं। लेखक की स्त्री विषयक धारणा के अनुसार जिन प्रतिकूल परिस्थितियों में पड़कर पुरुष बौखलाने व घबराने लगता है, स्त्रियाँ उन परिस्थितियों का सामना बड़े संयम और धैर्य से करती हैं। लेखक के अनुसार स्त्री अपने जीवन में जितनी गंभीर है, उतनी ही मौन भी है। उसके मौन को अभिव्यक्ति देना भी साहित्य का परम दायित्व है। स्त्री-लोक के इस सामर्थ्य को तिवारी जी ने अपनी पत्नी में निकटता से अनुभव किया है, जिसका जिक्र उन्होंने एक स्थल पर किया भी है। अपने परिवार-समाज की स्त्रियों के यथार्थ को ही अपनी स्त्री-विषयक कविताओं में रूपायित करने की बात भी उन्होंने डायरी में की है। अक्टूबर, 2012 में रमणिका गुप्ता की पुस्तक 'स्त्री-मुक्ति' के लोकार्पण-कार्यक्रम में लेखक ने अपने दिये गये वक्तव्य की भी चर्चा की है, जिसमें अपना पक्ष रखते हुए उसने कहा था- "महाप्रकृति ने स्त्री-पुरुष को रथ के दो पहियों के रूप में बनाया है, जिनके परस्पर सहयोग के बिना सृष्टि का रथ नहीं चल सकता। विवाह और परिवार भारतीय समाज-व्यवस्था का आधार हैं। अतः स्त्री-मुक्ति के बारे में समाज को छोड़कर विचार करना उचित नहीं है। हमें सोचना होगा कि कैसे स्त्री-पुरुष प्रेम के साथ रहते हुए प्रकृति के मूल निहितार्थ का निर्वाह कर सकेंगे। इसके लिए सिर्फ लिखने से काम नहीं चलेगा, बल्कि समाज-सुधार आंदोलन चलाने पड़ेंगे। पुरुष को संवेदनशील व स्त्री को आत्म-निर्भर बनना होगा।"

स्त्री-मुक्ति की तरह ही दलित-मुक्ति पर भी डायरीकार ने अपनी राय बड़ी बेबाकी से रखी है। 2010 में पटना में 'दलित साहित्य' विषय पर आयोजित एक संगोष्ठी की चर्चा के माध्यम से उसने दलित चिंतकों की दलित-साहित्य विषयक संकीर्ण अवधारणा पर अपनी असहमति दर्ज की है। तिवारी जी को यह बात सबसे अधिक खटकती है कि दलित चिंतकों का ध्यान रचना पर कम और रचनाकारों की वर्ण-जाति पर अधिक है। वे चाहते ही नहीं कि सवर्ण उनके जीवन-यथार्थ के विषय में सोचें या लिखें। लेखक की दृष्टि में उनका यह दृष्टिकोण उन्हें 'आइसोलेशन' में ले जाता है जिसमें रहकर लेखन तो हो सकता है सामाजिक बदलाव संभव नहीं है। लेखक का कहना है- "अगर दलित लेखकों ने अपने आचरण और विचारों में बदलाव लाने की कोशिश नहीं की तो साहित्य में उसकी चर्चा तो हो जाएगी, लेकिन सामाजिक बदलाव का सपना पूरा नहीं होगा।..."

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने साहित्यिक पुरस्कारों हेतु साहित्यकार-चयन की प्रक्रिया में राजनीतिक उठापटक, परस्पर खेमेबाजी तथा स्वार्थलोलुपता की निर्णायक भूमिका को भी डायरी में अनावरित करने का काम किया है। उनकी दृष्टि में अनेक ऐसे योग्य और श्रेष्ठ साहित्यकार हैं जो साहित्य-सेवा में न केवल उत्कृष्ट व सम्माननीय कार्य करते हैं अपितु अपना पूरा जीवन इसी में खपा देते हैं, किंतु उन पर किसी समिति की नजर तक नहीं जाती। लेखक कुबेरनाथ राय जैसे साहित्यकारों को इसी कोटि में देखता है, जो वैचारिक खेमेबाजी और अवसरवादी ताकतों की उपेक्षा के शिकार रहे हैं।

तिवारी जी मानना है कि प्रायः बड़े-बड़े लेखक-साहित्यकार अपनी लेखकीय उपलब्धियों में वृद्धि के लिए मानवीय मूल्यों की तिलांजलि दे देते हैं। उसके अनुसार यह बात समझ से परे है कि एक बेहतर लेखक एक बेहतर आदमी से बेहतर क्यों माना जाना चाहिए? क्या आदमियत में किसी को प्रभावित करने की क्षमता नहीं होती? स्वार्थ व अज्ञानता के वशीभूत व्यक्ति अच्छा लेखक बनने के फेर में अच्छा मनुष्य बनने से चूक जाता है। डायरी के आरंभिक पन्नों में ही एक स्थान पर लेखक ने अपने समय के मशहूर शायर फिराक गोरखपुरी की लेखकीय उपलब्धियों के प्रति सम्मान व्यक्त किया है, किंतु फिराक साहब ने अपनी विवाहिता पत्नी के साथ जिस प्रकार का सुलूक किया वह लेखक की दृष्टि में किसी भी तरह मानवीय नहीं है।

'दिन रैन' में केवल साहित्यिक विषयों पर ही चिंतन नहीं है। अपने समकालीन भारतीय तथा वैश्विक घटनाओं पर भी डायरीकार की सजग दृष्टि रही है। यहाँ छोटी-बड़ी घटनाओं की जानकारी तो है ही साथ ही 1971 के भारत-पाक युद्ध, बांग्लादेश की आजादी, आपात् काल की घोषणा, 1977 के आम चुनाव जैसी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का सूक्ष्म विश्लेषण भी किया गया है। 1971 में पाकिस्तान व बांग्लादेश में जो राजनीतिक संकट पैदा हुआ था उसकी सिलसिलेवार जानकारी डायरी के पन्नों में है। पूर्वी पाकिस्तान में जनता का पाकिस्तानी सेना से भीषण संघर्ष चला जिसके चित्र यहाँ हैं। रेडियो से मिल रही खबरों को लेखक ने उसी शैली में उद्धृत कर इसकी स्वाभाविकता बांध कर रखी- "यह आकाशवाणी है, पूर्व पाकिस्तान में सेना से जनता का जमकर संघर्ष हो रहा है। ढाका और चटगाँव की सड़कों पर घमासान लड़ाई जारी है। पूरे प्रांत में कर्फ्यू लगा दिया गया है। देखते ही गोली मारने का आदेश हो चुका है।" पाकिस्तानी सेना ने बांग्लादेशी जनता की आवाज को बर्बरतापूर्वक दमित किया उसे लेखक लोकतंत्र की हत्या ही मानता है। आंदोलनकारी जनता और सेना आमने-सामने थी। इस पूरे संकट को डायरीकार ने इस प्रकार अभिव्यक्त किया है- "लोकतंत्र के मस्तक पर फौजी पंजे। अंधकार में सधे

हुए खूनी हाथ टटोल रहे हैं गर्दन।..., यह सेना और जनता की लड़ाई है। लोकतंत्र और तानाशाही की लड़ाई है।.... आगजनी, लूट, बलात्कार सामूहिक हत्या। यह बीसवीं सदी का सबसे बड़ा नरसंहार है।" अमानवीयता और तानाशाही पाकिस्तान का रक्तचरित्र रहा है जिसकी एक बानगी भर 1971 के इस कृत्य में देखी गयी थी। पूरा विश्व यहाँ की साढ़े सात करोड़ जनता के साथ हो रहे अमानवीयता को तमाशबीन की तरह देखता रहा। भारत ने इसके विरुद्ध आवाज उठायी जिसका परिणाम हुआ भारत-पाक युद्ध। 17 दिसंबर 1971 को लेखक ने पाकिस्तानी सेना के समर्पण और युद्ध समाप्ति का पूरा विवरण डायरी में दिया है। लेखक के अनुसार धर्म, जाति और रंग के आधार पर किसी राष्ट्र का निर्माण नहीं हो सकता। उसकी बुनियाद मानवता से ही निर्मित हो सकती है।

तिवारी जी ने अपनी डायरी में 25 जून 1975 की आधी रात को इंदिरा गाँधी द्वारा आपात् काल की घोषणा और उससे पैदा हुए हालात की भी चर्चा की है। इन विवरणों का अपना एक ऐतिहासिक महत्त्व हो सकता है। लेखक की दृष्टि में आजाद भारत और यहाँ के लोकतंत्र के मुँह पर यह सबसे बड़ा तमाचा था। जिस तरीके से रातोंरात नागरिकों के बुनियादी अधिकार छीन लिये गये, वह किसी भी दृष्टि से देशहित में नहीं कहा जा सकता। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी को इस आपात् काल के भी कुछ अनुकूल प्रभाव दिखायी पड़े- "समाज में कुछ लोग भय से अनुशासित होते हैं उन पर अनुकूल असर हुआ है। मगर जो लोग स्वविवेक से अनुशासित होते हैं उनके लिए तो स्वाधीनता जरूरी है। लोकतंत्र की असली बुनियाद वही है।" इसी कड़ी में वे 1977 के आम चुनाव की भी बात करते हैं जिसमें जे.पी. आंदोलन से प्रेरित जनता ने जमकर हिस्सा लिया और आपात् काल का सारा आक्रोश मतपेटियों में उड़ेल दिया। यहाँ लेखक स्वस्थ लोकतंत्र को जिंदा रखने के लिए मीडिया की सशक्तता को बचाए रखना अनिवार्य मानता है। लेखक के शब्दों में- "देवकांत बरुआ कहते थे कि 'इंदिरा इज़ इंडिया'। ऐसी ही चाटुकारिता ने इंदिरा जी को डुबा दिया। बी.बी.सी. ने सही टिप्पणी की है कि यदि समाचारों पर सेंसर न होता तो जनता के आक्रोश से वे परिचित होतीं और तब शायद उनकी नीतियाँ कुछ दूसरी होतीं। मीडिया और बुद्धिजीवी समाज की आँखें और उसकी आवाज होते हैं।"

डायरीकार ने सितंबर 2006 में लिखे एक पन्ने पर अपने समय की दो बड़ी अहिंसक क्रांतियों का जिक्र किया है। एक का परिणाम 1947 की आजादी और दूसरा जयप्रकाश नारायण की संपूर्ण क्रांति। दोनों ही क्रांतियों का लगभग एक जैसा ही लक्ष्य था- स्वाधीनता-प्राप्ति। यहीं पर लेखक ने एक तीसरी क्रांति की भी भविष्यवाणी की है जिसका लक्ष्य देश को भ्रष्टाचार से मुक्त कराना होगा। 2011 में अन्ना हजारे द्वारा चलाया गया आंदोलन इसी लक्ष्य-साधना हेतु था, जिसकी सफलता-असफलता का मूल्यांकन अभी शेष है। डायरी के अनुसार अन्ना के भ्रष्टाचार विरोधी देशव्यापी आंदोलन को लेखक ने अपना पूर्ण समर्थन दिया था। अन्ना हजारे की जिस खासियत ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया था वह थी उनमें दृढ़ता, सादगी और गाँधीवाद के प्रति समर्पण की भावना।

डायरी के पन्नों पर तिवारी जी ने बड़ी ही ईमानदारी से अपनी निजी जीवन के अनेक अनुभवों को भी साझा किया है। मसलन संकीर्ण गँवई वातावरण में पलने-बढ़ने के कारण 'सेक्स' जैसे विषय को सहज रूप में न गहण कर उसे हेयता की दृष्टि से देखने के कारण लेखक के अंतर्मन में एक यौन-अतृप्ति का भाव लंबे समय तक बना रहा। इस मसले पर वे आधुनिक मनोविज्ञान का समर्थन करते हुए स्वीकार करते हैं कि सेक्स की अतृप्ति और तद्जन्य कुंठा मनुष्य में अनेक प्रकार की मानसिक विकृतियों को जन्म देती है। जिन ग्रामीण गालियों को लेखक बचपन से सुनता आया है उन पर जब वह ध्यान देता है तो पाता है कि इनमें से अधिकांश स्त्री-पुरुषों के यौन-संबंधों व गुप्तांगों को लक्ष्य करके ही दी जाती हैं। लेखक की दृष्टि में इसका मूल कारण समाज की यौन-अतृप्ति और एक विशेष प्रकार की कुंठा होती है।

'दिन रैन' में लेखक द्वारा विभिन्न संगोष्ठियों व आयोजनों में भाग लेने हेतु की गयी यात्राओं व उनके विवरणों को पर्याप्त स्थान मिला है। ये यात्राएँ वृत्तांत मात्र नहीं हैं, बल्कि इनके बहाने उन स्थानों की ऐतिहासिक-सांस्कृतिक महत्ता की पड़ताल के साथ-साथ आयोजनों में विद्वानों द्वारा दिये गये अनेक महत्त्वपूर्ण व्याख्यानों की रोचक व ज्ञानवर्द्धक झलकियाँ भी मौजूद हैं।

डायरी के आखिरी हिस्से में तिवारी जी ने साहित्य अकादमी के अध्यक्ष पद पर अपने चुनाव की पूरी प्रक्रिया व अपने समग्र अनुभवों को भी व्यक्त किया है। अकादमी के 12वें अध्यक्ष के रूप में वे निर्विरोध चुने गये थे जिसकी चर्चा उन्होंने बड़े गर्व से की है। डायरी के आखिरी पन्ने पर 20 जून, 2013 की तिथि दर्ज है जिसमें डायरीकार ने कर्म की महत्ता और उसकी सर्वशक्तिमान की व्याख्या की है। अंत में उसका इस बात पर सारा जोर है कि मनुष्य का सबसे भरोसेमंद साथ उसका कर्म होता है जो कभी और कहीं भी उसका साथ नहीं छोड़ता।

समग्रतः 'दिन रैन' एक ऐसी डायरी है जो लेखक की दिनचर्या को बयां नहीं करती। वह समूचे कालखंड में घटित सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक घटनाओं से संवाद करती नजर आती है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इसकी सधी हुई भाषा और अभिव्यक्ति शैली डायरी की सहजता और जीवंतता को आखिरी तक बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

OOO